

शक्त्युपासना का तात्त्विक-रहस्य

सत्यनारायण भारद्वाज ममता शर्मा

सारसंक्षेप

सृष्टि के प्रारम्भ से अद्यावधि-पर्यन्त शक्ति-तत्त्व का समाराधन किया जाता रहा है। आगम-ग्रन्थों में शक्ति-उपासना के सम्बन्ध में जिस पद्धति का विवेचन उपलब्ध होता है वह काल भेद से तीन कल्प के रूप में वर्णित है। दनुपुत्र रम्भ के द्वारा पंचाग्नि-साधना किये जाने से यह प्रथम रम्भ-कल्प कहलाता है। चूंकि इस कल्प में अष्टादश-भुजाओ वाली देवी की उपासना की जाती रही है अतः इसका उग्रचण्डा-कल्प भी नाम है यह कल्प श्रीरामावतार पर्यन्त सेवित रहा है। नीललोहित-कल्प अथवा भद्रकाली-कल्प के रूप में प्रसिद्ध द्वितीय कल्प में षोडश- भुजाओ वाली देवी की उपासना की जाती रही है जो श्रीकृष्णावतार पर्यन्त सेवित रही। हिरण्याक्ष दैत्य द्वारा सप्तद्वीपा वसुमती को समुद्र में डुबो दिये जाने से व्यथित देवों की प्रार्थना पर भगवान नारायण ने विशाल श्वेत वर्ण के वाराह का रूप धारणकर इस धरा का उद्धार किया था फलतः यह तृतीय श्वेतवाराह-कल्प के रूप में आज तक प्रसिद्ध है। इस कल्प में दश-भुजाओ वाली सौम्य-स्वरूपा कात्यायनी देवी की उपासना की जाती रही है। प्रकृत विषय का विस्तृत विवेचन इस शोध आलेख का प्रतिपाद्य है।

मुख्यशब्दावली: शिव-शक्ति, सप्तशती, समाराधन, पंचाग्नि-साधना, मननशीलता, विवेकशीलता रम्भ-कल्प, नीललोहित-कल्प, श्वेतवाराह-कल्प, उग्रचण्डा, भद्रकाली, कात्यायनी, पुंस्त्वदृष्टि, स्त्रीत्वदृष्टि, चित्, चित्ति, अन्तर्दृष्टि, समष्टि-चक्षु, स्रष्टा, व्यष्टि-चक्षु, भोक्ता, अनुदबुद्ध शक्ति, चिद्भावापन्न ।

प्रस्तावना

न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्^१ महाभारत के इस श्लोकांश से यह सुस्पष्ट है कि विधाता के द्वारा सृजित प्रजाओं में मानव सर्वश्रेष्ठ है। जैसाकि श्रीमद्भागवतकार ने मुक्त-कण्ठ से यह उद्घोष किया है कि-

सृष्ट्वा पुराणि विविधान्यजयाऽऽत्मशक्त्या,
वृक्षान् सरीसृपपशून् खगदंशमत्स्यान्।
तैस्तैरतुष्टहृदयो मनुजं विधाय,
ब्रह्मावलीकधिषणं मुदमाप देवः॥^२

मननशीलता विवेकशीलता मानव की श्रेष्ठता का प्रमाण है। सृष्ट्यारम्भ से ही यह मानवी-सृष्टि शक्तितत्त्व की समाराधिका रही है, ऐसा मनीषियों का मत है। सृष्टि के प्रारम्भ में परमशिव ही शिव और शक्ति नामक विधि-निषेधात्मक तत्त्वद्वय रूप में आविर्भूत हुये। जो निर्विशेष शुद्ध तत्त्व सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का आधार है, उसे शिव अर्थात् पुंस्त्वदृष्टि से 'चित्' और शक्ति अर्थात् स्त्रीत्वदृष्टि से चिति कहते हैं। शुद्ध-चेतन और शुद्ध-चिति- ये एक ही तत्त्व के दो नाम हैं। माया में प्रतिबिम्बित उसी तत्त्व की जब पुरुष-रूप से उपासना की जाती है, तब उसे ईश्वर, शिव अथवा भगवान आदि नामों से पुकारते हैं और जब स्त्री-रूप से उसकी उपासना करते हैं तब उसी का ईश्वरी, दुर्गा अथवा भगवती सदृश अनेक नामों से आवाहन करते हैं। इस प्रकार शिव-गौरी, कृष्ण-राधा, राम-सीता तथा विष्णु-लक्ष्मी परस्पर अभिन्न ही हैं। इनमें वस्तुतः कुछ भी भेद नहीं है, केवल उपासक की दृष्टि भेद से ही इनके नाम और रूपों में भेद माना जाता है।

सर्व शाक्तमजीजनत् इस आगम वाक्य के अनुसार समस्त विश्व ही शक्ति से उत्पन्न है। शक्ति के द्वारा ही अनन्त ब्रमाण्डों का पालन, पोषण और संहार होता है। ब्रह्मा, शंकर, विष्णु, अग्नि, सूर्य, वरुण आदि देव भी उस शक्ति से सम्पन्न होकर स्व-स्वकार्य करने में सक्षम होते हैं। प्रत्यक्षरूप से सब कायों की कारणरूपा भगवती शक्ति ही है-

शक्तिः करोति ब्रह्माण्डं सा वै पालयतेऽखिलम्।
इच्छया संहरत्येषा जगदेतच्चराचरम्॥
न विष्णुर्न हरः शक्रो न ब्रह्मा न च पावकः।

न सूर्यो वरुणः शक्तः स्वे स्वे कार्ये कथंचन॥
तया युक्ता हि कुर्वन्ति स्वानि कार्याणि ते सुराः।
कारणं सैव कार्येषु प्रत्यक्षेणावगम्यते॥³

जो विचारशील हैं तथा साधना के सोपान पर अग्रसर हैं, उन्हें यह बोध है कि साधना का तात्पर्य तो शक्ति की ही आराधना है क्योंकि किसी भी मनुष्य की अन्तर्दृष्टि में कैसा भी आदर्श लक्ष्यरूप में प्रतिष्ठित क्यों न हो, यदि वह शक्ति संचय करते हुए अपनी दुर्बलता का परिहार न कर सके तो सम्यक् रूप से उस आदर्श की उपलब्धि कर उसे आत्मस्वरूप में परिणत करने में वह समर्थ नहीं होगा। चूँकि समस्त सिद्धियाँ शक्तिसापेक्ष हैं अतएव साधक को चाहे-जैसी सिद्धि अभीष्ट हो, उसकी आत्म-शक्ति की दृढ़ता के बिना प्राप्ति सम्भव नहीं।

इस प्रकार आन्तरिक-दृष्टि से चिन्तन करने पर यह स्पष्ट होता है कि भारतीय जनमानस में अनुष्ठीयमान शिव, विष्णु, गणेश, सूर्य अथवा अन्य किसी भी देवता की उपासना मूलतः शक्ति की ही आराधना है। इस प्रकार वैष्णवादि समस्त सम्प्रदायों की सकल साधनाएं शक्तिसाधना के ही अन्तर्गत हैं। इसके अतिरिक्त साक्षात्-भाव से भी शक्ति की साधना हो सकती है। यहां साक्षात्-भाव से शक्ति-साधना का तात्पर्य है कि- हम इन्द्रियद्वार में रूप, रसादि जिस पाचभौतिक स्थूल-जगत् का अनुभव करते हैं, वह इन्द्रियों की उपशान्त अवस्था में तद्रूप में वर्तमान नहीं रहता है। वस्तुतः एक तरह से बाह्य-जगत् इन्द्रियों का ही बहिर्विलास मात्र है। चक्षु से ही रूप का विकास होता है तथा चक्षु ही पुनः उस रूप का दर्शन करता है। **समष्टि-चक्षु रूप का स्रष्टा है और व्यष्टि-चक्षु उसका भोक्ता।** इसी प्रकार अन्यान्य इन्द्रियों का भी यही स्वभाव है। अतएव समष्टि-भावापन्न पंचेन्द्रियो से भौतिक जगत् का विकास होता है तथा व्यक्तिगत पंचेन्द्रियां उस जगत् का भोग करती हैं। इन इन्द्रियों का प्रत्याहार करके मूल स्थान में लीन कर लेने से एक ओर जहां बाह्य जगत् का लोप हो जाता है, वही दूसरी ओर इन्द्रियों के अभाव के कारण उनकी सम्भोग-सम्भावना ही निवृत्त हो जाती है। यदि पहले से ही चित्त्व-क्षेत्र में ज्ञान का सार हो तो इस अवस्था में विशुद्ध अन्तःकरण का आविर्भाव होता है तथा साथ ही अन्तर्जगत् का स्फुरण होता है। बाह्यजगत् की भाँति अन्तर्जगत् में भी **समष्टिभूत अन्तःकरण स्रष्टा है तथा व्यष्टिभूत-अन्तःकरण उसका भोक्ता।** जिसे अन्तर्जगत् या आतिवाहिक-जगत् के नाम से वर्णन करते हैं, वह वस्तुतः विशुद्ध अन्तःकरण का बाह्य विकास मात्र है। बाह्येन्द्रियों की भाँति अन्तःकरण के भी निरुद्ध-वृत्ति

की अवस्था को प्राप्त होने पर अन्तर्जगत् का लोप हो जाता है। इसके पश्चात् जीव शुद्ध कारणभूमि में स्थान पाता है। तब समष्टिकारण बिन्दु का स्फुरणात्मक कारण-जगत् ही दृश्य होता है और व्यष्टिकारण बिन्दु तदात्मकभाव में उस दृश्य का दर्शन करता है। सौभाग्यवश यदि कोई भाग्यवान् जीव इस मूलग्रन्थि का भेदन कर पाता है तो वह मूल अविद्या के विलास-स्वरूप इस मिथ्या प्रपंच के पाशजाल से सदा के लिये मुक्त हो जाता है।

भिद्यते हृदय-ग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।^४

इस तरह स्थूल, सूक्ष्म और कारण रूप सृष्टि शक्ति के ही विकास मात्र हैं। शक्ति के इन तीन विभागों में शक्ति की तीन प्रकार की अवस्थिति के अनुसरण से उसका परिणामस्वरूप जगत् भी कारणादि त्रिविधरूपों में प्रकट होता है। शक्ति के बहिर्मुख होकर घनीभाव तथा स्थूलत्व को प्राप्त करने पर एक ओर जहां भौतिक तत्वों का आविर्भाव होता है, वहीं दूसरी ओर वह क्रमशः विरल होते-होते अन्तः संकोचावस्था को प्राप्त कर आत्मा अथवा बिन्दु पद वाच्य हो जाती है। अतएव जिस प्रकार आत्मा, देवता और भूत एक ही आधारशक्ति की त्रिविध अवस्था मात्र है उसी प्रकार कारण, लिंग तथा स्थूल यह त्रिविध जगत् भी एक ही मूल सत्ता के तीन प्रकार के परिणाम के सिवा और कुछ नहीं है। शक्ति के साथ सत्ता के सम्बन्ध में यह स्मरण रखना होगा कि दोनों के वैषम्य से ही सृष्टि में ईश्वरभाव और जीवभाव का उन्मेष होता है किन्तु जब साम्य-अवस्था का उदय होता है, तब एक ओर जहां जीव और ईश्वर का पारस्परिक भेद तिरोहित हो जाता है, वहीं दूसरी ओर सृष्टि और दृष्टि एकार्थबोधक व्यापार हो जाते हैं। तब भूमि भेद के अनुसार साम्य की उपलब्धि होते होते त्रिविध साम्य के बाद स्वाभाविक नियम से परमाद्वैत अथवा महासाम्य का आविर्भाव होता है।

यह त्रिविध साम्य पारस्परिक भेद का परिहार कर जिस महासाम्य में एकत्व लाभ करता है, वही परमाद्वैत या ब्रह्मतत्त्व है। महाशक्ति के उद्बोधन के बिना इस अद्वैत तत्त्व में स्थिति लाभ करना तो दूर रहा, प्रवेशाधिकार पाने की भी सम्भावना नहीं है। कहने की आवश्यकता नहीं कि भूमि भेद से प्रत्येक स्तर में शक्ति के उद्बोधन की आवश्यकता है। नहीं तो तत्त्व भूमि की सत्ता अचेतनभाव को त्याग कर स्वयं प्रकाश चैतन्य के साथ एकीभूत नहीं हो सकती, क्योंकि अनुदबुद्धशक्ति सत्ता की प्रकाशक नहीं होती और अप्रकाशमान सत्ता कभी

चिद्भावापन्न नहीं हो सकती। वह असत्संकल्प एवं जडता की ही नामान्तर मात्र होती है अर्थात् शक्ति की आराधना के बिना जिस प्रकार स्थूल-भाव को अपने अधीन नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार आत्मसत्ता की भी उपलब्धि नहीं हो सकती। अतः समस्त जनमानस में जितने प्रकार के धर्मसम्प्रदाय हैं, उनमें किसी न किसी रूप में शक्ति की आराधना ही मूल है।

तान्त्रिकमत में शक्तिस्वरूप विवेचन

मन्त्र-यन्त्र-तन्त्र ये शब्दत्रय भिन्नार्थक होते हुये भी उपासना की विधा के ही रूप हैं। **मन्त्रः देवता-प्राण यन्त्रः देवता-वपुः** इस आप्तवचन के अनुसार मन्त्र देवता का प्राण या आत्मा तथा यन्त्र देवता का शरीर होता है। जिस प्रकार जीवधारियों में प्राण या आत्मा तथा शरीर को एक-दूसरे से जोड़े रखने के लिए **तन्त्रिका-तन्त्र** होता है ठीक उसी प्रकार इन मन्त्र-रूपी प्राण या आत्मा तथा यन्त्र-रूपी शरीर को एक-दूसरे से जोड़े रखने के लिए जगद्गुरु शिव ने **तन्त्र** नामक तीसरे तत्व का प्राकट्य किया। जिसके **अश्वक्रान्ता, रथक्रान्ता और विष्णुक्रान्ता** नामक क्रम के तीनों प्रकारों में ६४-६४ तंत्रों का प्रणयन हुआ। इनमें आमनाय भेद से दीक्षा का भेद होता है। प्राचीन समय में भारतवर्ष में **केरलीय, काश्मीरीय और गौड़ीय** नामक तीन गुरुरम्परायें प्रचलित थी जिनसे साधक विधिवत् पूर्णत्व लाभ प्राप्त करते थे। जिस प्रकार अग्निकण को शुष्क तृणादि में रखकर फूँकने से अग्नि का समूह बन जाता है और यदि उस अग्नि कण को उपेक्षा बुद्धि से छोड़ दें तो वह बुझ जाता है। उसी प्रकार प्रत्येक जीव का **‘मृणालतन्तु’** द्वारा ब्रह्म के साथ सम्बन्ध हैं उस तन्तु को जो सम्भाल सकते हैं वे तन्तु द्वारा ब्रह्म के साथ एकता को प्राप्त कर शिव रूप बन सकते हैं और यदि उस तन्तु को उपेक्षा कर छोड़ देते हैं तो जीव पशु बनकर 84 लाख योनियों में घूमता रहता है। **‘ब्रह्मरन्ध्र’** से निकले हुए **“श्वेतवाष्प”** को **‘ब्रह्मतन्तु’** कहते हैं वह तन्तु अव्यक्त, सूक्ष्म एवं सब जीवों में विद्यमान है, अभ्यास की दृढ़ता से वह दृष्टिगोचर हो सकता है इस तन्तु को जिससे जाना जा सकता है उसका ही नाम तन्त्र है, तन्त्र को जानने वाले लोग तान्त्रिक कहलाते हैं।

शक्तितत्त्वप्रकाशिका दुर्गासप्तशती

सांसारिक सकल कामनाओं के साधक चतुष्पष्टि तंत्रों का प्रतिपादन कर देने के बाद पराम्बा भगवती पार्वती ने भूतभावन भगवान् विश्वनाथ से पूछा- भगवन् इन तंत्रों की साधना से जीव

के आधि-व्याधि, शोक-संताप, दीनता-हीनता आदि क्लेश तो दूर हो जायेंगे, किन्तु गर्भवास और मरण के असह्य दुःखो की निवृत्ति तो इससे नहीं होगी। कृपा कर इन दुस्सह दुःखो की निवृत्ति या मोक्ष या परमपद की प्राप्ति का भी कोई उपाय बताइये। परम कल्याणमयी पुत्रवत्सला पराम्बा के साग्रह अनुरोध पर भगवान् शंकर ने श्रीविद्यासाधना-प्रणाली का प्राकट्य किया। इसी प्रसंग को आचार्य शंकर भगवत्पाद ने सौन्दर्यलहरी में इन शब्दों में प्रकट करते हैं-

चतुःषष्ट्या तन्त्रैः सकलमतिसन्धाय भुवनं,
स्थितस्तततत्सिद्धिप्रसवपरतन्त्रैः पशुपतिः।
पुनस्त्वन्निर्बन्धादखिलपुरुषार्थैकघटना-
स्वतन्त्रं ते तन्त्रं क्षितितलमवातीतरदिदम्॥^५

इस प्रकार युगो-युगो से भक्तवांछाकल्पतरु श्रीविद्याललिताम्बा ही दुर्गतिनाशिनी श्रीदुर्गाम्बा के रूप में प्रसिद्ध है जिसकी उपासना प्रत्येक युग में श्रीदुर्गासप्तशती द्वारा होती आयी है। श्रीदुर्गासप्तशती नामक ग्रन्थरत्न मार्कण्डेयपुराण के ७८ से ९० अध्याय पर्यन्त भगवती पराम्बा के शक्तिस्वरूप को कथाव्याज से संग्रथित किया गया है। सतयुग में अन्धकादि दैत्यो द्वारा-

अन्धकाख्यो महादैत्यः दुर्गाहं परायणः।
कवचस्याहु तिजात्पापान्महेशेन निपातितः॥^६

त्रेतायुग में श्रीराम और रावणादि द्वारा-

कवचस्याहु ति दोषेण रावणः प्रलयं गतः॥^७

द्वापरयुग में श्रीकृष्णादि द्वारा-

कृष्णेन संस्तुते देवि शश्वद्वक्त्या सदाम्बिके॥^८

कलियुग में वर्तमान तक शक्ति उपासको द्वारा सेवित यह लघुग्रन्थरत्न सदैव ही मेरे मनस्-कुतूहल का विषय रहा है। इस ग्रन्थ के प्रत्येक श्लोक में ऐसा रहस्य अन्तर्हित है कि

कथावस्तु के अतिलघु कलेवर वाला होते हुये भी सृष्टि के प्रारम्भ से अद्यावधिपर्यन्त कामधेनुवत् फलद रहा हैं ।

प्रकृत-ग्रन्थ के अन्तर्गत विद्यमान दुर्गा-पद पर दृष्टिपात मात्र से यह जिज्ञासा होती है कि दुर्गा का क्या स्वरूप है? श्रीदेव्यथर्वशीर्ष में यह स्पष्ट विवेचन किया गया है कि-

नमामि त्वां महादेवीं महाभयविनाशिनीम्।
महादुर्गप्रशमनीं महाकारुण्यरूपिणीम्॥

यस्याः स्वरूपं ब्रह्मादयो न जानन्ति तस्मादुच्यते अज्ञेया। यस्या अन्तो न लभ्यते तस्मादुच्यते अनन्ता। यस्या लक्ष्यं नोपलक्ष्यते तस्मादुच्यते अलक्ष्या। यस्या जननं नोपलभ्यते तस्मादुच्यते अजा। एकैव सर्वत्र वर्तते तस्मादुच्यते एका। एकैव विश्वरूपिणी तस्मादुच्यते नैका। अत एवोच्यते अज्ञेयाअनन्ताअलक्ष्याजैका नैकेति।

मन्त्राणां मात्रिका देवी शब्दानां ज्ञानरूपिणी।
ज्ञानानां चिन्मयातीता शून्यानां शून्यसाक्षिणी।
यस्या परतरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तिता॥९

प्रकृत-ग्रन्थ की उपासना पद्धति के कवच प्रकरण में नवदुर्गाः प्रकीर्तिताः श्लोकांश के आधार पर शैलपुत्र्यादि नवदुर्गाओं का उल्लेख मिलता है। यहाँ यह जिज्ञासा होनी स्वाभाविक है कि दुर्गा नवप्रकार की ही होती है अथवा इनकी संख्या इससे भी अधिक है? इसी क्रम में श्रीदुर्गाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम् में वनदुर्गा च मातंगी, चतुर्थ अध्याय के ध्यान में ध्यायेद् दुर्गा जयाख्यां, द्वादश अध्याय के ध्यान में शशिधरां दुर्गा त्रिनेत्रां भजे एवं ऋग्वेदोक्त देवीसूक्तं के दुर्गा दुर्गतिहारिणी भवतु नो रत्नोल्लसत्कुण्डला ध्यान में विभिन्न दुर्गाओं के नाम संकीर्तन से नवाधिक दुर्गाओं का होना स्वतः सिद्ध है किन्तु गम्भीर दृष्टि से चिन्तन करने पर यह स्पष्ट होता है कि यद्यपि दुर्गा तो नवप्रकार की ही होती है तथापि कल्प भेद से इनके उपर्युक्त विभिन्न नामों का कीर्तन किया गया है।

प्रकृत-ग्रन्थ की उपासना पद्धति में प्राधानिक, वैकृतिक और मूर्ति भेद से तीन रहस्य उपलब्ध होते हैं इनमें जहाँ प्राधानिक रहस्य में सर्वस्याद्या महालक्ष्मीस्त्रिगुणापरमेश्वरी के द्वारा भगवती महालक्ष्मी को आद्याशक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। चूंकि सभी

शक्तियों का आदि स्वरूप महालक्ष्मी है जो रजस्प्रधाना, त्रिगुणात्मिका तथा महिषासुरमर्दिनी है। महालक्ष्मी के तात्त्विक स्वरूप का वर्णन प्रकृत-ग्रन्थ के द्वितीय अध्याय के ध्यान में वर्णित है जिसमें देवी के अठारह भुजाओं का वर्णन है-

अक्षस्रक्परशुं गदेषु कुलिशं पथ धनुष्कुण्डिकां,
दण्डं शक्तिमसिं च चर्मजलजं घण्टां सुराभाजनम्।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां,
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम् ॥^{१०}

भगवती महालक्ष्मी के द्वारा चिन्तन किये जाने पर कि मैं त्रिगुणात्म प्रकृति वाली हूँ तो मेरे रजस् स्वरूप के अतिरिक्त तमस् और सत्त्व स्वरूप की उपस्थिति कहाँ है? इस प्रकार का चिन्तन करते ही उन दोनों गुणों ने मूर्तिमन्त होकर आद्याभगवती से अपने नाम और कर्म के विषय में जिज्ञासा रखी। फलतः तमस् से महाकाली का प्राकट्य हुआ जिसने दशशिर, दश-पाद और दश-भुजा वाले स्वरूप को धारण किया-

खड्गं चक्रगदेषु चापपरिघाअछूलं भुशुण्डीं शिरः,
शंखं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम् ।
नीलाशमद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां,
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम् ॥^{११}

इसी तरह सत्त्व से भी महासरस्वती का प्राकट्य हुआ जिसने अष्ट-भुजा वाले स्वरूप को धारण किया-

घण्टाशूल हलानि शंखमुसले चक्रं धनुः सायकं,
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम् ।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा,
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यादिनीम् ॥^{१२}

अतः उपर्युक्त विवेचन से यह सुतरां सिद्ध है कि तमस्-गुणाधिष्ठात्री दश-भुजा महाकाली और सत्त्व-गुणाधिष्ठात्री अष्ट-भुजा महासरस्वती का संघी-भूत स्वरूप ही अठारह भुजाधारिणी महालक्ष्मी है। इन तीनों ही शक्तियों को क्रमशः महालक्ष्मी को इच्छा-शक्ति, महाकाली को

क्रिया-शक्ति और महासरस्वती को ज्ञान-शक्ति के नाम से भी जाना जाता है। इन तीनों शक्तियों के वैशिष्ट्य को ऋषिवर ने प्रकृत-ग्रन्थ के तीनों चरित्रों के तेरह अध्यायों में विभाजित किया है जिसे जागतिक-प्रपंचों में विभ्रमित मानव सांकेतिक रूप से समझ कर सहज में सभी कार्यों को सम्पादित कर सकता है। ज्ञातव्य है कि तीनों चरित्रों में क्रिया-शक्ति महाकाली को एक-अध्याय, इच्छा-शक्ति महालक्ष्मी को तीन-अध्याय और ज्ञान-शक्ति महासरस्वती को नौ-अध्याय में विभाजित कर यह सूत्र दिया है कि स्वाभिमत-सिद्धि का इच्छुक व्यक्ति प्रकृत-ग्रन्थ के अध्याय-योजनावत् किसी कार्य को जितना करने की इच्छा हो उसके विषय का तीन गुणा अधिक ज्ञानार्जन करे और चतुर्थांश ही क्रियान्वित करे तो सदैव सिद्धि को प्राप्त होता है। किन्तु आज के समय में व्यक्ति को किसी कार्य को जितना करने की इच्छा हो उसके विषय का चतुर्थांश ही ज्ञान अर्जनकर और तीन गुणा अधिक क्रियान्वित करना चाहता है उसे सदैव असफलता ही प्राप्त होती है।

इन तीनों ही शक्तियों का समष्टिरूप चामुण्डा कहलाता है जिसके विषय में प्रकृत-ग्रन्थ में यह स्पष्ट विवेचन किया गया है कि पूर्वकाल में शुम्भ-निशुम्भ से पराजित होकर इन्द्र सहित सब देवताओं ने अपमानित, राज्यभ्रष्ट और अधिकारहीन कर स्वर्ग से निकाल दिये जाने पर तिरस्कृत होकर अपराजितादेवी के द्वारा पूर्व में प्रदत्त वर का स्मरण कर गिरिराज हिमालय पर जाकर भगवती विष्णुमाया की स्तुति करने लगे-

पुरा शुम्भनिशुम्भाभ्यामसुराभ्यां शचीपतेः।
त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च हृता मदबलाश्रयात्॥^{१३}
हृताधिकारास्त्रिदशास्ताभ्यां सर्वे निराकृताः।
महासुराभ्यां तां देवीं संस्मरन्त्यपराजिताम्॥^{१४}
इति कृत्वा मतिं देवा हिमवन्तं नगेश्वरम्।
जग्मुस्तत्र ततो देवीं विष्णुमायां प्रतुष्टुवुः॥^{१५}

इस प्रकार जब देव-गण उन चौबीस कलाओं वाली भगवती की स्तुति कर रहे थे तब गंगा स्नान व्याज से देवी पार्वती वहाँ आयी-

एवं स्तवादियुक्तानां देवानां तत्र पार्वती।
स्नातुमभ्याययौ तोये जाहनव्या नृपनन्दन॥^{१६}

भगवती के द्वारा देवताओं से यह पूछे जाने पर कि आप किसकी स्तुति कर रहे हैं? तब उन्होंने भगवती के शरीर कोश से प्रकट हुई शिव-देवी बोली कि ये देवगण मेरी स्तुति कर रहे हैं। भगवती पार्वती के शरीर कोश से इन अम्बिका का प्रादुर्भाव होने से **कौशिकी** भी कहते हैं। चूंकि पार्वती के शरीर से उनका वास्तविक तेज कौशिकी के रूप में निकल गया जिससे शेष शरीर काला पड़ जाने से कालिका नाम से प्रसिद्ध हो गया। कौशिकी का अपने पंचकोशों पर पूर्ण स्वामित्व था। इच्छा, ज्ञान और क्रिया-शक्तित्रय के सम्मिलितरूप चिदाम्बा कुण्डलिनी के रूप में आत्मविश्रान्त चैतन्यमूर्ति कौशिकी को चण्ड-मुण्ड नामक दैत्यों द्वारा सेना सहित घेरे जाने पर कोप से श्याम हुये मुख तथा विकृत भ्रूभंगिमा वाली के ललाट-फलक से कराल वदना काली का प्राकट्य हुआ। जिसने युद्ध में सेना सहित चण्डमुण्ड का वध कर उनके शिर कौशिकी को समर्पित किये इसी कारण यह लोक में चामुण्डा नाम से विख्यात हुई।

कोपेन चास्या वदनं मषीवर्णमभूतदा॥^{१७}

भुकुटीकुटिलतस्या ललाटफलकादद्भुतम्।

काली करालवदना विनिष्क्रान्तासिपाशिनी॥^{१८}

यस्माच्चण्डं च मुण्डं च गृहीत्वा त्वमुपागता।

चामुण्डेति ततो लोके ख्याता देवि भविष्यति॥^{१९}

शक्ति-उपासना विषयक काल निर्धारण

आगम-ग्रन्थों में शक्ति-उपासना के सम्बन्ध में जिस काल का विवेचन उपलब्ध होता है वह तीन कल्प के रूप में वर्णित है-रम्भ-कल्प, नीललोहित-कल्प और श्वेतवाराह-कल्प।

1. **रम्भ-कल्प:-** दनुपुत्र रम्भ के द्वारा क्षीरी वट-वृक्ष के नीचे बैठकर पंचाग्नि साधना किये जाने से यह रम्भ-कल्प कहलाता है। चूंकि इस कल्प में अष्टादश भुजाओं वाली देवी की उपासना की जाती है अतः इसका उग्रचण्डा-कल्प भी अपर नाम है जो श्रीरामावतार पर्यन्त सेवित रहा-

वृक्षं रसालवटं प्राप्य रम्भोऽग्निमसेवत॥^{२०}

पंचाग्निसाधनासक्तः स रम्भस्तु यदाभवत्॥^{२१}

2. **नीललोहित-कल्पः** भद्रकाली-कल्प के रूप में प्रसिद्ध इस कल्प में षोडश भुजाओं वाली देवी की उपासना की जाती है जो श्रीकृष्णावतार पर्यन्त सेवित रहा।
3. **श्वेतवाराह-कल्पः** हिरण्याक्ष दैत्य द्वारा सप्तद्वीपा वसुन्धरा को समुद्र में डुबो दिये जाने से व्यथित देवों की प्रार्थना पर भगवान नारायण ने विशाल श्वेत वर्ण के वाराह का रूप धारणकर इस धरा का उद्धार किया था फलतः यह कल्प श्वेतवाराह-कल्प के रूप में आज तक प्रसिद्ध है।

निष्कर्ष

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि सृष्टि के प्रारम्भ से अद्यावधि-पर्यन्त न केवल मनुष्य अपितु देव-दानव-असुर आदि के द्वारा भी स्वयं को तैजस-सम्पन्न करने की दृष्टि से शक्ति-तत्त्व का समाराधन किया जाता रहा है यह दूसरी बात है कि यह समाराधन देश-काल-परिस्थिति-आगम-पुराण-तन्त्र आदि शास्त्रों में वर्णित आमनाय तथा पद्धति भेद से अलग-अलग विधानों वाली बताई गयी है। मम सदृश अल्पमेधस् सम्पन्न अकिंचन के द्वारा भगवती के चरणों में यह ही निवेदन है कि-

तव च का किल न स्तुतिरम्बिके, सकलशब्दमयी किल ते तनुः।

निखिलमूर्तिषु मे भवदन्वयो, मनसिजासु बहिःप्रसरासु च॥

इति विचिन्त्य शिवे शमिताशिवे, जगति जातमयत्नवशादिदम्।

स्तुतिजपार्चनचिन्तनवर्जिता, न खलु काचन कालकलास्ति मे॥

-महामहेश्वर आचार्य अभिनवगुप्त

सन्दर्भ सूची

1. महाभारतम्-शान्तिपर्व-180/12.
2. श्रीमद्भागवत-11/9/28.
3. श्रीमद्देवीभागवत-1/8/37-39.
4. मुण्डकोपनिषद्-2/8.
5. सौन्दर्यलहरी-30.
6. बृहज्ज्योतिषार्णवे श्रीदुर्गोपासनाकल्पद्रुमाध्याये एकत्रिंश प्रकरणम्- 162, बृहत्पुरश्चर्यार्णवे।

7. बृहत्पुरश्चर्यार्णवे हवनप्रकरणे।
8. श्रीदुर्गासप्तशती/अर्गलास्तोत्र-19.
9. श्रीदुर्गासप्तशती श्रीदेव्यथर्वशीर्ष- 22 से 24.
10. श्रीदुर्गासप्तशती- द्वितीय अध्याय का ध्यान।
11. श्रीदुर्गासप्तशती- प्रथम अध्याय का ध्यान।
12. श्रीदुर्गासप्तशती- पंचम अध्याय का ध्यान।
13. श्रीदुर्गासप्तशती-2/2.
14. श्रीदुर्गासप्तशती-2/5.
15. श्रीदुर्गासप्तशती-2/7.
16. श्रीदुर्गासप्तशती-5/84.
17. श्रीदुर्गासप्तशती-7/5.
18. श्रीदुर्गासप्तशती-7/6.
19. श्रीदुर्गासप्तशती-7/27.
20. श्रीमद्देवीभागवत- 5/2/19.
21. श्रीमद्देवीभागवत- 5/2/20